नईदुनिया

संपादकीय

नागरिकों की सुरक्षा सरकार की पहली जिम्मेदारी

जब कोई देश युद्ध की आग में झुलस रहा हो और उसके नागरिक उस संघर्ष में फंस जाएं, तब सरकार की भूमिका केवल कूटनीतिक बयान देने तक सीमित नहीं रह जाती। उस समय सबसे बड़ी परीक्षा यह होती है कि राज्य अपने लोगों को सुरक्षित वापस लाने के लिए कितनी तत्परता और संवेदनशीलता दिखाता है। सुप्रीम कोर्ट का हालिया आदेश इसी जिम्मेदारी की याद दिलाता है। यह सरकार को स्पष्ट संदेश देता है कि युद्ध क्षेत्र में फंसे भारतीयों की सुरक्षा के लिए त्वरित और ठोस कदम उठाना अब विकल्प नहीं, बल्कि अनिवार्यता है।

विदेश मंत्रालय को तुरंत एक नोडल अधिकारी नियुक्त करना चाहिए, जो युद्ध में मारे गए, घायल हुए या लापता भारतीयों के परिवारों के साथ लगातार संपर्क बनाए रखे। यह अधिकारी केवल औपचारिक पद नहीं होगा, बल्कि उन परिवारों की पहली उम्मीद बनेगा, जो अपने बेटे, भाई या पति की खबर के लिए दिन-रात इंतजार कर रहे हैं। अदालत ने यह भी कहा है कि ऐसे परिवारों की पहचान कर उन्हें हर जरूरी जानकारी और सहायता उपलब्ध कराई जाए, ताकि वे अनिश्चितता के अंधेरे में न रहें।

यह आदेश किसी एक मामले तक सीमित नहीं है। युद्ध के समय सबसे अधिक प्रभावित मजदूर, छात्र और कामगार होते हैं, जो रोजगार या शिक्षा के लिए विदेश गए होते हैं। उनके पास न तो तत्काल वापसी के संसाधन होते हैं और न ही पर्याप्त सुरक्षा। ऐसे में राज्य का दायित्व और बढ़ जाता है। नागरिक ने देश पर भरोसा करके विदेश का रुख किया था, इसलिए संकट की घड़ी में उसका साथ देना भी सरकार का कर्तव्य है।

सुप्रीम कोर्ट का यह हस्तक्षेप इसलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह याद दिलाता है कि विदेश नीति केवल द्विपक्षीय संबंधों और व्यापार समझौतों तक सीमित नहीं होती। उसका सबसे मानवीय स्वरूप तब सामने आता है, जब अपने नागरिक संकट में हों। ऐसे समय त्वरित निर्णय, बेहतर समन्वय और स्पष्ट संवाद की आवश्यकता होती है। नोडल अधिकारी की नियुक्ति इसी जरूरत का उत्तर है, ताकि सूचनाओं का भ्रम न फैले और परिवारों को दर-दर भटकना न पड़े।

भारत ने पहले भी अंतरराष्ट्रीय संकटों के दौरान अपने नागरिकों को सुरक्षित वापस लाने के लिए बड़े अभियान चलाए हैं। हर बार यह अनुभव मिला कि समय पर तैयारी और लगातार संवाद सबसे जरूरी होते हैं। कई बार सूचना मिलने में हुई देरी परिवारों की पीड़ा बढ़ा देती है और समन्वय के अभाव में राहत भी देर से पहुंचती है। अदालत का आदेश इसी कमी को दूर करने का प्रयास है।

इस आदेश को केवल कानूनी प्रक्रिया नहीं, बल्कि मानवीय दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए। एक मां, पत्नी या पिता के लिए, जिसका अपना किसी युद्ध क्षेत्र में फंसा हो, हर पल चिंता से भरा होता है। ऐसे समय सरकार की ओर से नियमित जानकारी, सहायता और भरोसा देना उतना ही जरूरी है, जितना राहत अभियान चलाना। युद्ध के दौरान अफवाहें भी तेजी से फैलती हैं। ऐसे में नोडल अधिकारी की भूमिका और महत्वपूर्ण हो जाती है। सरकार को इस आदेश को केवल फाइलों तक सीमित न रखकर दूतावासों को सक्रिय करना चाहिए और हर प्रभावित परिवार तक एकल खिड़की प्रणाली के माध्यम से सहायता पहुंचानी चाहिए। यही एक जिम्मेदार राष्ट्र की पहचान है कि वह संकट की हर घड़ी में अपने नागरिकों की सुरक्षा को सर्वोपरि रखे।

आजकल

नर्सिंग घोटाले की कानूनी लड़ाई महंगी

760 करोड़ का बोझ, व्यवस्था पर सवाल

प्रदेश के नर्सिंग कॉलेज घोटाले ने शिक्षा व्यवस्था की गंभीर खामियों को उजागर कर दिया है। राज्य सरकार को अब तक कानूनी प्रक्रिया और छात्रों के समायोजन पर 760 करोड़ 62 लाख रुपये खर्च करने पड़े हैं। यह राशि बताती है कि नियामक स्तर की लापरवाही का बोझ अंततः सरकारी खजाने और जनता पर पड़ता है।

वर्ष 2022 की जांच में 760 नर्सिंग कॉलेजों में गंभीर अनियमितताएं सामने आई थीं। कई संस्थानों में न पर्याप्त बुनियादी ढांचा था, न योग्य फैकल्टी और न ही क्लिनिकल सुविधाएं, फिर भी उन्हें मान्यता मिल गई। इसका खामियाजा हजारों छात्रों को भुगतना पड़ा, जिनका भविष्य अधर में लटक गया।

घोटाला सामने आने के बाद सरकार को छात्रों को दूसरे कॉलेजों में स्थानांतरित करना पड़ा। इसके साथ ही कॉलेज संचालकों से कानूनी लड़ाई, वरिष्ठ अधिवक्ताओं की फीस और प्रशासनिक खर्च लगातार बढ़ते गए। महाधिवक्ता को प्रति पेशी 95 हजार रुपये तक और वरिष्ठ अधिवक्ताओं को करोड़ों रुपये का भुगतान किया गया। इस पूरी प्रक्रिया ने सरकारी खर्च को 760 करोड़ रुपये से अधिक पहुंचा दिया।

यदि शुरुआत में ही मान्यता प्रक्रिया पारदर्शी और सख्त होती, तो न इतना बड़ा घोटाला होता और न ही जनता का धन इस तरह खर्च करना पड़ता। यही राशि ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाओं को मजबूत करने, नए स्वास्थ्य केंद्र खोलने और नर्सों की कमी दूर करने में उपयोग की जा सकती थी।

अब केवल कानूनी लड़ाई पर्याप्त नहीं है। दोषी अधिकारियों और कॉलेज संचालकों की जवाबदेही तय हो, मान्यता प्रक्रिया पूरी तरह पारदर्शी बने और प्रभावित छात्रों को राहत के साथ फीस वापसी की व्यवस्था भी सुनिश्चित की जाए। यह मामला याद दिलाता है कि प्रशासनिक लापरवाही की कीमत आखिरकार जनता को ही चुकानी पड़ती है।

भोपाल के वैज्ञानिकों ने रचा इतिहास, नाक के रास्ते दिमाग तक पहुंचेगी दवा

पुरानी जड़ी-बूटियों और आधुनिक तकनीक के संगम से इलाज की नई उम्मीद

मस्तिष्क और स्नायु तंत्र से जुड़ी बीमारियों का इलाज हमेशा सबसे बड़ी चुनौती रहा है, क्योंकि मुंह से ली गई कोई भी दवा पहले पेट, फिर रक्त और उसके बाद शरीर के अन्य हिस्सों से गुजरते हुए दिमाग तक पहुंचती है। इस लंबे सफर में दवा की प्रभावशीलता कम हो जाती है और समय भी अधिक लगता है। कई बार दवा अपने लक्ष्य तक पर्याप्त मात्रा में पहुंच ही नहीं पाती। नतीजा यह होता है कि मरीजों को लंबे समय तक दवाएं लेनी पड़ती हैं और शरीर पर उनका अतिरिक्त बोझ भी पड़ता है। भोपाल के वैज्ञानिकों ने इस समस्या का समाधान नाक के माध्यम से खोजा है। नाक और दिमाग के बीच एक सीधा संपर्क मार्ग होता है और उसी मार्ग का उपयोग कर दवा को सीधे प्रभावित हिस्से तक पहुंचाया जा सकता है।

चिकित्सा विज्ञान में हर कुछ वर्षों में ऐसा मोड़ आता है, जो इलाज की दिशा ही बदल देता है। भोपाल के वैज्ञानिकों ने ऐसा ही एक मोड़ तैयार किया है, जहां प्राचीन ज्ञान और आधुनिक तकनीक मिलकर मरीजों के लिए उम्मीद की नई किरण बन रहे हैं। यहां के शोधकर्ताओं ने तीन वर्षों की मेहनत के बाद नाक के रास्ते सीधे दिमाग तक दवा पहुंचाने की तकनीक विकसित की है। यह तकनीक न केवल तेज असर करेगी, बल्कि दवाओं के दुष्प्रभावों को भी काफी हद तक कम कर देगी। सबसे खास बात यह है कि इस शोध में आधुनिक विज्ञान के साथ आयुर्वेद की उन जड़ी-बूटियों को भी शामिल किया गया है, जिनका उपयोग हमारे पूर्वज सदियों से करते आए हैं।

मस्तिष्क और स्नायु तंत्र से जुड़ी बीमारियों का इलाज हमेशा सबसे बड़ी चुनौती रहा है, क्योंकि मुंह से ली गई कोई भी दवा पहले पेट, फिर रक्त और उसके बाद शरीर के अन्य हिस्सों से गुजरते हुए दिमाग तक पहुंचती है। इस लंबे सफर में दवा की प्रभावशीलता कम हो जाती है और समय भी अधिक लगता है। कई बार दवा अपने लक्ष्य तक पर्याप्त मात्रा में पहुंच ही नहीं पाती। नतीजा यह होता है कि मरीजों को लंबे समय तक दवाएं लेनी पड़ती हैं और शरीर पर उनका अतिरिक्त बोझ भी पड़ता है। भोपाल के वैज्ञानिकों ने इस समस्या का समाधान नाक के माध्यम से खोजा है। नाक और दिमाग के बीच एक सीधा संपर्क मार्ग होता है और उसी मार्ग का उपयोग कर दवा को सीधे प्रभावित हिस्से तक पहुंचाया जा सकता है।

इस शोध की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें केवल नई तकनीक ही नहीं, बल्कि पारंपरिक ज्ञान को भी सम्मान दिया गया है। वैज्ञानिकों ने प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रंथों में वर्णित उन जड़ी-बूटियों की पहचान की है, जो मस्तिष्क को सुदृढ़ बनाती हैं और स्मरण शक्ति बढ़ाने में सहायक मानी जाती हैं। इसके बाद आधुनिक ड्रग डिलीवरी तकनीक की मदद से उन जड़ी-बूटियों के सक्रिय तत्वों को ऐसे रूप में तैयार किया गया है कि वे नाक के माध्यम से सीधे दिमाग तक पहुंच सकें। इस प्रकार प्राचीन और आधुनिक ज्ञान का संगम एक नए उपचार का मार्ग प्रशस्त कर रहा है, जिसे विज्ञान की भाषा में नेजल-टू-ब्रेन डिलीवरी सिस्टम कहा जाता है।

प्रारंभिक परीक्षणों में यह तकनीक सफल रही है और अब इसके क्लीनिकल ट्रायल की तैयारी चल रही है। वैज्ञानिकों का मानना है कि यदि यह तकनीक पूरी तरह सफल होती है, तो अल्जाइमर, पार्किंसन, माइग्रेन और तनाव जैसी कई बीमारियों के इलाज में क्रांतिकारी बदलाव आएगा। सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि मरीजों को कम मात्रा में दवा लेनी पड़ेगी और उसका असर भी जल्दी होगा। इससे न केवल मरीज का समय बचेगा, बल्कि इलाज का खर्च भी कम होगा। ग्रामीण और दूरदराज के इलाकों में, जहां विशेषज्ञ डॉक्टर और महंगे इलाज की सुविधाएं सीमित हैं, वहां यह तकनीक वरदान साबित हो सकती है।

इस उपलब्धि का महत्व केवल चिकित्सा तक सीमित नहीं है। यह इस बात का प्रमाण है कि भारत का पारंपरिक ज्ञान आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना हजारों वर्ष पहले था। अंतर केवल इतना है कि अब उस ज्ञान को आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर परखा जा रहा है और नए युग की आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित किया जा रहा है। भोपाल में हुए इस शोध ने यह भी दिखाया है कि आयुर्वेद और एलोपैथी एक-दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हो सकते हैं। दोनों मिलकर मानवता की बेहतर सेवा कर सकते हैं।

इस शोध के सफल होने से भोपाल चिकित्सा अनुसंधान के क्षेत्र में देश के मानचित्र पर और अधिक मजबूती से उभरेगा। अब तक इस तरह के बड़े नवाचार महानगरों तक सीमित माने जाते थे, लेकिन मध्यप्रदेश की राजधानी ने यह साबित कर दिया है कि प्रतिभा और संकल्प हो, तो किसी भी स्थान से दुनिया बदलने वाले आविष्कार संभव हैं। वैज्ञानिकों की टीम अब इस तकनीक को और बेहतर बनाने तथा इसे आम लोगों तक पहुंचाने के लिए कार्य कर रही है, ताकि यह केवल प्रयोगशाला तक सीमित न रहकर अस्पतालों और क्लीनिकों तक पहुंचे।

यह शोध केवल एक नई दवा या तकनीक नहीं, बल्कि सोच में बदलाव का प्रतीक है। यह इस बात की घोषणा है कि हम अपनी जड़ों को भुलाए बिना भविष्य की ओर बढ़ सकते हैं। जब विज्ञान करुणा से मिलता है और परंपरा नवाचार से हाथ मिलाती है, तो इलाज केवल बीमारी का नहीं, बल्कि पूरे समाज का होता है। भोपाल के वैज्ञानिकों की यह पहल आने वाली पीढ़ियों के लिए एक मिसाल बनेगी और यह याद दिलाएगी कि असली तरक्की वही है, जो इंसान को स्वस्थ, सम्मानजनक और आत्मविश्वास से भरा जीवन जीने का अवसर दे।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

दुश्मनी पीछे, सहयोग आगे

241 दिन अंतरिक्ष में रहने के बाद जब अंतरिक्ष यात्रियों का दल कजाकिस्तान के मैदानों में सुरक्षित उतरा, तो दुनिया ने एक बार फिर देखा कि इंसानी हौसला और सहयोग की ताकत किसी भी तनाव से बड़ी होती है। इस दल में अमेरिका, रूस और अन्य देशों के यात्री शामिल थे, जिन्होंने धरती से लाखों किलोमीटर दूर रहकर न केवल विज्ञान के लिए काम किया, बल्कि यह भी साबित किया कि जब बात मानवता की हो, तो देशों की दुश्मनी और राजनीति पीछे छूट जाती है। पिछले कुछ वर्षों में रूस और अमेरिका के बीच धरती पर कई मुद्दों को लेकर तनाव बढ़ा है। बयानबाजी हुई, प्रतिबंध लगे और कूटनीतिक रिश्तों में खटास आई। लेकिन अंतरिक्ष में इन दोनों देशों ने एक साथ काम करना नहीं छोड़ा। अंतरराष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन आज भी सहयोग की सबसे बड़ी मिसाल है, जहां रूसी और अमेरिकी अंतरिक्ष यात्री एक ही छत के नीचे रहते हैं, एक साथ खाना खाते हैं, एक साथ प्रयोग करते हैं और एक-दूसरे की जान की जिम्मेदारी लेते हैं। 241 दिनों का यह मिशन उसी सहयोग की एक और मजबूत कड़ी बन गया।

इस बार के अभियान में भी यही देखने को मिला। यान में अमेरिकी तकनीक थी, रूसी रॉकेट था और अलग-अलग देशों के वैज्ञानिकों का डेटा था। लॉन्च से लेकर लैंडिंग तक हर कदम पर दोनों देशों की एजेंसियों ने मिलकर काम किया। जब यान पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश कर रहा था, तब रूस और अमेरिका, दोनों के कंट्रोल रूम में एक साथ निगरानी हो रही थी। लैंडिंग के बाद बचाव दल में भी दोनों देशों के विशेषज्ञ शामिल थे, क्योंकि सबको पता था कि अंतरिक्ष में गलती की कोई जगह नहीं है और वहां इंसान की जान सबसे कीमती है।

241 दिन का सफर आसान नहीं था। शून्य गुरुत्व में रहना शरीर के लिए चुनौती है। हड्डियां कमजोर होती हैं, मांसपेशियां घटती हैं, नींद का चक्र बिगड़ता है और सबसे बड़ी बात, घर-परिवार से इतने लंबे समय तक दूर रहना मानसिक रूप से कठिन होता है। लेकिन इस दल ने हर मुश्किल को हंसकर पार किया। उन्होंने सैकड़ों वैज्ञानिक प्रयोग किए, पृथ्वी की जलवायु पर नजर रखी, अंतरिक्ष के कचरे का अध्ययन किया और भविष्य में मंगल तथा चंद्रमा पर जाने के लिए जरूरी डेटा इकट्ठा किया। इस मिशन की सबसे बड़ी सीख यही थी कि दुश्मनी भले ही धरती पर हो, लेकिन अंतरिक्ष में इंसानियत पहले आती है। जब एक अमेरिकी यात्री बीमार पड़ा, तो रूसी डॉक्टर ने उसकी मदद की। जब रूसी यान में तकनीकी दिक्कत आई, तो अमेरिकी इंजीनियरों ने रात भर जागकर समाधान निकाला। स्टेशन पर सभी ने मिलकर जन्मदिन मनाए, त्योहार मनाए और एक-दूसरे का हौसला बढ़ाया। ये तस्वीरें बताती हैं कि अगर नीयत साफ हो, तो सबसे बड़े मतभेद भी छोटे लगने लगते हैं।

कजाकिस्तान में लैंडिंग के बाद का नजारा भी भावुक करने वाला था। हेलीकॉप्टर से उतरकर मेडिकल टीम सबसे पहले यात्रियों के पास पहुंची, क्योंकि लंबे समय बाद गुरुत्वाकर्षण में लौटने पर शरीर को संभलने में समय लगता है। परिवार वाले दूर से हाथ हिला रहे थे और पूरी दुनिया टीवी पर यह पल देख रही थी। 241 दिनों के बाद धरती की मिट्टी को छूना, धरती की हवा में सांस लेना और अपनों से मिलना, यह एहसास शब्दों में नहीं बताया जा सकता।

वैज्ञानिकों के लिए यह मिशन किसी खजाने से कम नहीं है। इस दौरान जो प्रयोग हुए, उनसे पता चला कि लंबी अवधि तक अंतरिक्ष में रहने का इंसानी शरीर पर क्या असर होता है। यह जानकारी आने वाले समय में बहुत काम आएगी, क्योंकि अब नासा और रोसकॉसमॉस, दोनों ही चंद्रमा पर स्थायी बेस और मंगल मिशन की तैयारी कर रहे हैं। अगर वहां इंसान को महीनों और वर्षों तक रहना है, तो पहले यह समझना जरूरी है कि 241 दिन अंतरिक्ष में रहने के बाद शरीर और दिमाग कैसे प्रतिक्रिया करते हैं।

इस सफल अभियान ने दुनिया को एक बड़ा संदेश दिया है कि राजनीति अपनी जगह है और विज्ञान अपनी जगह। जब धरती पर तनाव होता है, तो नेता बयान देते हैं, लेकिन जब अंतरिक्ष की बात आती है, तो वही नेता भी कहते हैं कि सहयोग जारी रहना चाहिए, क्योंकि अंतरिक्ष स्टेशन पर अरबों डॉलर लगे हैं और वहां हर देश का निवेश है। सबसे बड़ी बात, वहां इंसानों की जान दांव पर है। इसलिए रूस और अमेरिका ने तय किया कि चाहे कुछ भी हो जाए, अंतरिक्ष में हाथ नहीं खींचेंगे। इस सोच का फायदा सीधे आम लोगों को मिला। स्कूलों में बच्चों ने इस मिशन को लाइव देखा। कई बच्चों ने कहा कि वे भी अंतरिक्ष यात्री बनना चाहते हैं। विज्ञान के शिक्षकों ने कक्षाओं में बताया कि देखो, कैसे अलग-अलग देशों के लोग मिलकर काम कर सकते हैं। मीडिया ने भी इस बात को उजागर किया कि तनाव के बीच भी सहयोग मुमकिन है। शीत युद्ध के समय भी अमेरिका और सोवियत संघ ने अंतरिक्ष में हाथ मिलाया था। अपोलो-सोयूज मिशन उसी दोस्ती की निशानी था। आज फिर वही कहानी दोहराई गई है। फर्क सिर्फ इतना है कि अब तकनीक ज्यादा उन्नत है, चुनौतियां ज्यादा बड़ी हैं और दुनिया ज्यादा जुड़ी हुई है। लेकिन मूल भावना वही है कि अंतरिक्ष सबका है और इसे मिलकर ही खोजा जा सकता है। अब आगे की योजना भी इसी सहयोग पर टिकी है। चंद्रमा पर बेस बनाने के लिए रूस और अमेरिका दोनों अपनी-अपनी योजनाओं पर काम कर रहे हैं, लेकिन कई क्षेत्रों में फिर से साझेदारी की बात चल रही है। मंगल पर जाने के लिए भी अकेले किसी एक देश के लिए खर्च बहुत ज्यादा है। इसलिए विशेषज्ञ मानते हैं कि भविष्य के बड़े मिशन तभी सफल होंगे, जब देश अपने मतभेद भुलाकर साथ आएंगे।

241 दिन अंतरिक्ष में बिताने वाले इस दल ने हमें यही सिखाया है कि सीमाएं नक्शे पर होती हैं, इंसान के दिल में नहीं। जब लक्ष्य बड़ा हो, तो रास्ते अपने आप निकल आते हैं। जब मकसद इंसानियत की भलाई हो, तो हथियार पीछे रख दिए जाते हैं और हाथ आगे बढ़ाए जाते हैं। इसलिए यह अभियान सिर्फ 241 दिनों की यात्रा नहीं है। यह इस बात का सबूत है कि दुनिया चाहे जितनी बंटी हुई हो, लेकिन जब आसमान की तरफ देखने की बात आती है, तो सभी की निगाहें एक साथ ऊपर उठ जाती हैं। रूस-अमेरिका की दुश्मनी अपनी जगह, लेकिन अंतरिक्ष में दोनों ने मिलकर दिखाया कि सहयोग से ही भविष्य बनेगा और वही असली जीत है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

84 महादेव दर्शन यात्रा

श्री लुम्पेश्वर महादेव (41वें महादेव) : 'पश्चाताप का द्वार कभी बंद नहीं होता'

जहाँ एक पापी राजा का कोढ़ भी शिव-दर्शन मात्र से धुल गया

डॉ. नवीन आनंद जोशी

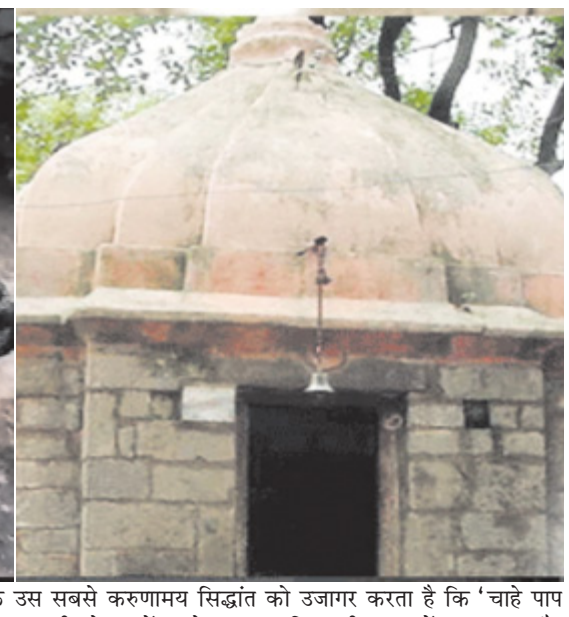

उज्जैन की पावन धरा, जिसे साक्षात् महाकाल वन कहा जाता है, केवल महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग की नगरी भर नहीं - यहाँ चौरासी महादेवों के रूप में देवाधिदेव भगवान शिव के अनगिनत स्वरूप युगों से भक्तों को दर्शन देते आए हैं। इसी पावन शृंखला में 41वें स्थान पर विराजमान हैं 'श्री लुम्पेश्वर महादेव'- भैरवगढ़ पुल के पार, महाकाल वन क्षेत्र में केशवार्क महादेव के समीप स्थित यह शिवलिंग एक ऐसी कथा समेटे हुए है जो पाप, दंड और अंततः शिव-कृपा से मिलने वाली मुक्ति का अद्भुत उदाहरण है।

कथा के अनुसार प्राचीन काल में 'लुम्पाधिप' नामक एक म्लेच्छ गणों का राजा था, जिसकी रानी विशाला थीं। एक बार कुछ ब्राह्मणों के आग्रह पर राजा युद्ध हेतु 'सागम ऋषि' के आश्रम पहुँचा। वहाँ राजा ने आश्रम की कामधेनु गाय की माँग की। जब ऋषि ने यह माँग अस्वीकार कर दी, तो क्रोधित राजा ने न केवल कामधेनु गाय, बल्कि संपूर्ण आश्रम को ही नष्ट कर डाला, और अपने बाणों से स्वयं सागम ऋषि का वध कर दिया। यह प्रसंग हमें मानव-हृदय की उस भयावह अवस्था का स्मरण कराता है जब सत्ता और क्रोध विवेक पर हावी हो जाते हैं- जहाँ एक क्षण की उग्रता जीवन भर के लिए अपराध का बोझ बन जाती है।

कुछ ही देर बाद सागम ऋषि के पुत्र 'समिद्ध' आश्रम पहुँचे। पिता को मृत देखकर वे शोक-विह्वल हो उठे, और अत्यंत पीड़ा में उन्होंने राजा को यह श्राप दे दिया कि वह 'कुष्ठ रोग' से ग्रसित होगा। यह श्राप किसी क्रूरता से नहीं, बल्कि एक पुत्र की असहनीय वेदना से उपजा था- इसे समझना भी उतना ही आवश्यक है जितना राजा के अपराध को समझना। शीघ्र ही राजा कुष्ठ रोग से पीड़ित हो गया, और अंततः जर्जर होकर मृत्यु की प्रतीक्षा में चिता पर जा लेटा।

ठीक उसी क्षण, जब राजा जीवन की अंतिम साँसें गिन रहा था, वहाँ स्वयं 'देवर्षि नारद' प्रकट हुए। उन्होंने राजा को समिद्ध के श्राप का सत्य बताया, और साथ ही यह भी बताया कि इस श्राप से मुक्ति का एक मार्ग शेष है- महाकाल वन में केशवार्क महादेव के समीप स्थित एक शिवलिंग का श्रद्धापूर्वक दर्शन और पूजन। यह प्रसंग सनातन धर्म के उस सबसे करुणामय सिद्धांत को उजागर करता है कि 'चाहे पाप कितना भी घोर क्यों न हो, भगवान शिव की शरण में पश्चाताप और सच्ची भक्ति से मुक्ति का द्वार सदैव खुला रहता है।'

नारद मुनि की बात सुनकर राजा तत्काल महाकाल वन की ओर चल पड़ा। वहाँ पहुँचकर उसने अपनी रानी सहित पवित्र 'क्षिप्रा नदी' में स्नान किया और अत्यंत श्रद्धा से शिवलिंग के दर्शन किए। कथा है कि दर्शन मात्र से राजा का वर्षों पुराना कुष्ठ रोग पूर्णतः समाप्त हो गया। कृतज्ञ राजा ने अपनी रानी के साथ वहाँ उपस्थित समस्त मुनियों का यथोचित सम्मान किया। चूँकि यह मुक्ति राजा 'लुम्पाधिप' के पूजन से प्राप्त हुई, इसलिए यह शिवलिंग 'लुम्पेश्वर महादेव' के नाम से विख्यात हुआ। मान्यता है कि जो भी श्रद्धालु पूर्ण भक्ति-भाव से यहाँ पूजन करता है, उसके सात जन्मों के संचित पाप नष्ट होते हैं और अंतकाल में उसे परम पद की प्राप्ति होती है।

यह कथा आधुनिक मनुष्य के लिए भी अत्यंत गहन संदेश देती है। जीवन में क्रोध और अहंकार के वशीभूत होकर की गई भूलें भले ही कितनी भी गंभीर क्यों न हों, यदि मनुष्य सच्चे हृदय से पश्चाताप करे और 'भगवान शिव' की शरण ग्रहण करे, तो कोई भी पाप स्थायी दंड नहीं बनता। लुम्पेश्वर महादेव हमें सिखाते हैं कि परिवर्तन और क्षमा का द्वार जीवन के अंतिम क्षण तक भी खुला रहता है- बशर्ते हृदय में सच्चा पश्चाताप हो।

'श्रावण मास' में इस शिवलिंग का विशेष महत्व और भी बढ़ जाता है। यह वह पावन मास है जब 'आशुतोष' अपने भक्तों की प्रत्येक पुकार शीघ्रता से सुनते हैं, और जिस प्रकार राजा लुम्पाधिप ने श्रद्धा और स्नान-पूजन से मुक्ति पाई, उसी प्रकार श्रावण में क्षिप्रा स्नान और शिव-दर्शन करने वाले श्रद्धालुओं के जीवन के संचित दोष भी शांत होने की मान्यता है। महाकाल वन के इस कोने में आज भी जब कोई श्रद्धालु लुम्पेश्वर महादेव के दर्शन करता है, वह केवल एक प्राचीन शिवलिंग नहीं देखता- वह उस अनंत करुणा का साक्षात्कार करता है जो सबसे बड़े पापी को भी अपनाने से पीछे नहीं हटती।

'जो सच्चे हृदय से पश्चाताप के साथ शिव की शरण में आता है, उसका सबसे बड़ा पाप भी दर्शन मात्र से धुल जाता है।'

॥ हर हर महादेव ॥

धर्म यात्रा निरंतर जारी..